लौहित्य साहित्य सेतु: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित अर्धवार्षिक द्विभाषिक ई-पत्रिका
वर्ष: 2 संख्या: 2 ; जनवरी-जून, 2021

मूली खाने वाला बूढ़ा

मूल लेखक : **लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा**

रचना : *लक्ष्मीनाथ बेजबरुवार गल्प समग्र* (साधु-कथार कुकी)

अनुवाद : **बिद्या दास**

प्रथम अध्याय

पुराने जमाने में किसी राजा के राज्य में एक बुजुर्ग दंपति रहा करता था। गाँव के सिरे पर एक छोटी-सी झोपड़ी बनाकर दोनों जन किसी तरह खा-पीकर अपना दिन गुज़ार रहे थे; खेती कुछ खास नहीं थी; घर के सामने की थोड़ी-सी ज़मीन पर कुछ साग-सब्जी उगाकर उन्हें बेचकर किसी तरह वे अपना गुज़ारा करते। घर में केवल बूढ़ा और बुढ़िया थे, आगे भी कोई नहीं, पीछे भी कोई नहीं।

एकबार बूढ़े ने कहीं से मूली का अच्छा बीज ले आकर उसे मिट्टी-गोबर आदि से रोपकर अच्छी खेती की; मूली की खेती को देखकर ऐसा लगता, मानो वह 'मुझे खाओ, मुझे खाओ' कहकर पास बुला रही है।

किस बोलती चील ने जाकर ख़बर पहुँचाई पता नहीं, स्वर्ग में बात निकली कि किसी जगह पर एक बूढ़े के खेत में ऐसी मूली की खेती हुई है जो 'मुझे खाओ, मुझे खाओ' करती है। धीरे-धीरे बात इन्द्रदेव के कानों तक पहुँची। बात लोभी बहादुर इन्द्र के पेट में 'कब मूली के पास पहुँच सकूँ' वाले भाव से मानो धान कूटने लगी।

द्वितीय अध्याय

सुबह किसी भी पशु-पक्षी के जगने से पहले बिस्तर का मोह त्याग कर बूढ़े की हमेशा सब्जी के बाग में जाने की आदत है। वह दिन में मूली के पौधों की जड़ों की गुड़ाई-निराई तो करता ही है, रात में भी कभी पौधों की जड़ें साफ करने में बूढ़े की कोई त्रुटि नहीं होती; यहाँ तक कि रात में कभी नींद में दाद खुजलाने पर भी वह बूढ़े को मूली के पौधें साफ करने की तरह ही भासित होता है। एक दिन सुबह ही सब्जी के बाग से बूढ़ा जोर-जोर से पुकारने लगा

- "बुढ़िया, ओ बुढ़िया !"

-बूढ़ी - "क्या हुआ ?"

-बूढ़ा- "जल्दी आकर देख !"

-बूढ़ी- "रात अभी बाकी है ! इतनी ठंड में मैं नहीं उठ सकती ।"

-बूढ़ा- "मेरा सिर खाने वाली बुढ़िया, आकर देख एकबार ।"

-बूढ़ी- "मेरा सिर खाने वाला बुद्धा, मैं नहीं जाऊँगी, बता क्या हुआ ?"

-बूढ़ा- "किसी ने मूली के पौधों की सारी जड़ें नष्ट कर दी है ।"

-बूढ़ी- "क्या हुआ ? किसने किया ? रुको, आ रही हूँ !"

कहकर पुराने कपड़े-लत्तों की रज़ाई ओढ़कर बुढ़िया सब्जी के बाग में जा पहुँची ।

तृतीय अध्याय

-बूढ़ा- "ऐसे नहीं चलेगा, वह जो कोई भी है अगर उसे मूली का स्वाद मिला है, तो आज भी आएगा । आज रात छिपकर उस चोर को पकड़ना पड़ेगा, क्या कहती है बुढ़िया ? अगर मैं फ़लाँ बूढ़ा हुआ, तो उसके गले में बैल का पगहा बाँधकर उसे मूसल से टांग दूँगा ।"

-बूढ़ी- "अगर मैं भी फ़लाँ बुढ़िया हुई, तो उसे झाड़ू से पीटूँगी ।"

इस तरह बूढ़ा-बुढ़िया दोनों ने योजना बनाकर पूरा दिन किसी तरह पार किया और रात को खा-पीकर चोर को पकड़ने के लिए छिपकर बैठ गये । ऊल्लू ने आवाज़ दी, गया, पर मूली-चोर नहीं आया । नर *हँयकली* (तीतर) बोलने लगा –

-"*हँयकली, हँयकली,* इतने धान-चावल का क्या किया?"

मादा *हँयकली* (मादा तीतर) ने उत्तर दिया –

-"बेटे ने खाया, बेटी ने खाया, ठोक् ठोक् थाक् थाक्", गया, पर मूली-चोर नहीं आया; गाँव के सिरे में सियार आवाज़े करने लगा, गया, पर मूली-चोर नहीं आया; पास ही कुत्ता भो..ओ..ऊ..ऊ करके गगनचुंबी अशुभ आवाज़ें करने लगा, गया, पर मूली-चोर नहीं आया । जिनके घर मूली नहीं है, वे बिस्तर पर तीन-चार बार करवट बदल-बदल कर सो रहे हैं, तब भी मूली-चोर नहीं आया ।"

निराश होकर बूढ़े ने दु:खी मन से बुढ़िया को आवाज़ लगायी –

- "क्या कहती हो बुढ़िया ! चोर तो नहीं आया ।"

किंकर्तव्यविमूढ़ होकर बुढ़िया क्या उत्तर दे सोच ही रही थी कि तभी मूली-चोर इन्द्र पूरे शरीर में चालता का बीज और तेल पोतकर, तेल

से सनी काली धोती घुटने तक पहनकर तथा एरी की चद्दर ओढ़कर बूढ़े व्यक्ति का वेष धारण करके सब्जी के बाग में घुसा और कच-कच करता हुआ मूली खाने लगा। सहस्रलोचन मूली खाने में इतना मग्न हो गया था कि उसे अपनी आँखों के सामने हाथों में बैल का पगहा, मूसल और झाड़ू लेकर द्वार के कोने में छिपे बूढ़ा-बुढ़िया भी नज़र नहीं आए।

चतुर्थ अध्याय

-इन्द्र- "ओ भैया, बस करो, मुझे और मत मारो। मैं अधमरा हो चुका हूँ; तुम भी बूढ़े हो, मैं भी बूढ़ा हूँ, थोड़ा रहम करो, अब से मैं ऐसा काम नहीं करूँगा ! मुझे छोड़ दो ! ओ भाभी ! झाड़ू से मेरी आँखें फट जायेंगी, अब बस भी करो ! मुझे खोल दो, आपके पैरों पर गिरकर विनती करता हूँ ! वध करने का पाप चढ़ेगा और मत मारो !"

-बूढ़ा- "तेरे मुँह से मैं सारी की सारी मूलियाँ निकालकर ही दम लूँगा ! मैंने अब तक गुरु को नहीं दिया, गोसाँई को नहीं दिया, भक्तों को नहीं दिया, महाजन को नहीं दिया, साधु-सन्तों को नहीं दिया; तूने मेरी मूली पहले ही चुराकर खा ली।"

-बूढ़ी- "मेरा यह झाड़ू टूट चुका है, और एक है, रुको ज़रा, उसे ले आती हूँ।"

-इन्द्र- "भैया, तुम्हें जो भी चाहिए, वहीं दूँगा, मुझे छोड़ दो।"

-बूढ़ा- "जो चाहिए वहीं देगा ? अच्छा। फटे चमड़ी वाला भिखारी, मुझे जो चाहिए वह देने की ज़रूरत नहीं, मेरे घर में गुलाम बनकर रहेगा और खेती में मदद करेगा, बस यह मान ले।"

-इन्द्र- "भैया, मैं उस काम के अलावा जो कहो वही कर दूँगा। बस यह काम नहीं कर पाऊँगा। तुम्हारे सामने और क्या झूठ बोलूँ, मैं इन्द्र हूँ। रूप बदलकर तुम्हारे खेत की मूली खाने आया था।"

-बूढ़ा- "तू इन्द्र है, तो अच्छी बात है, मैं तुझे ही ढूँढ़ रहा था; आज मेरे हाथों लगा है। जन्म से लेकर आज तक दु:ख में ही हमने दिन काटे, पर तेरी कृपादृष्टि अब तक हम पर नहीं पड़ी। बुढ़िया, जाकर दूसरा झाड़ू लेकर आ। *बाघेखाती* (एक असमीया गाली जिसका अर्थ है बाघ जिसे खाता हो) बुढ़िया, जा, जल्दी जा। आज इसकी आँखें फोड़ देता हूँ।"

-इन्द्र- "मैं कसम खाकर कहता हूँ भैया, तुम्हें जो चाहिए वहीं दूँगा, मुझे कुछ मत करना।"

-बूढ़ा- "ठीक है फिर, हम बूढ़ा-बुढ़िया दोनों सोचकर बताएँगे कि हमें क्या चाहिए।"

यह कहकर इन्द्र के गले पड़े पगहे को घर के खम्भे से अच्छी तरह बाँधकर बूढ़ा-बुढ़िया थोड़ी दूर जाकर आपस में बातचीत करने लगे।

पंचम अध्याय

इधर स्वर्ग में इन्द्र को पास न पाकर शची की नींद टूट गई और उसने रो-रोकर पूरा कोलाहल मचा दिया। क्या करें अब, घर पर कोई भी शची को चुप नहीं करा पा रहा; कई बार पानी में डूब कर मरने जाती, फिर पागल-सी होकर उसने पति के स्वभाव और चरित्र का आदि से अन्त तक बखान कर मीठे शब्दों से तरह-तरह की गालियाँ देकर धरती-पाताल एक कर दिए। चन्द्र-सूर्य, वायु-वरुण आदि तैंतीस करोड़ देवतागण, नौकर-चाकर आदि सभी मिलकर इन्द्र को ढूँढ़ने लगे, पर हर कोई बस ऊपर ही ऊपर ढूंढ़ रहा था, असल बात का पता किसी को भी नहीं मिल पाया। इन्द्र कहाँ चले गए, यह बात न समझ आने के कारण हर कोई यहाँ-वहाँ बस खोज करता रहा। इधर इन्द्र बूढ़े के मूसल की मार खाकर त्राहि-त्राहि कर रहा है, यह बात तो किसी को पता ही न थी।

छष्ठ अध्याय

बूढ़ा- "एक बड़ा-सा घर, एक *मारल-घर* (प्रधान घर के सामने वाला घर जहाँ औरतें काम करती हैं), एक बैठक, एक *बुलनी-घर* (एक घर से दूसरे घर में जाने वाला लम्बा-सा घर), एक गौशाला, एक भंडार-गृह, एक *धेकीघर*, हथकरघा घर, *नामघर* (नाम-संकीर्तन करने का घर), गौशाले-भरकर गाएँ और बैलें, तबेले भर भैंस; मेरे लिए सुंदर कपड़े, उसके बाद क्या कहते हैं तेरे लिए *रिहा-मेखला*, गहने-अलंकार, इतना ठीक है; क्या कहती है बुढ़िया ?"

-बूढ़ी- "क्या कहता है, मेरा माथा खानेवाला बुद्धा! पहले मेरे गहने-अलंकार, उसके बाद तेरा घर-द्वार, हाथी-भैंस।"

-बूढ़ा- "पहले घर-द्वार, वरना तेरे अलंकार कहाँ रखेगी, सिरफिरी बुढ़िया।"

-बूढ़ी- "सिरफिरा बुद्धा, तेरा सिर, अलंकार मेरे शरीर पर रहेंगे। घर-द्वार, गाय-भैंस जल कर खत्म हो जायेंगे, मर जायेंगे, पर मेरे अलंकार हमेशा रहेंगे। बिन दाँतों वाला सिरफिरा बुद्धा कहीं का!

-बूढ़ा- "मेरा माथा खाने वाली बिन दाँतों वाली सिरफिरी बुढ़िया! तेरे मरने पर तेरे अलंकार, तेरा सिर कहाँ रहेगा?"

-बूढ़ी- "मेरा माथा खाने वाला *हतसिरि* (हतश्री) सिरफिरा बुद्धा, मैं मरी तो मेरा सिर तू खा लेना। सिरफिरा बुद्धा, तूझे मेरा सिर खाने का बड़ा मन है न, रुक वही दे देती हूँ।"

यह कहकर बुढ़िया फों-फों कर दौड़ती हुई इन्द्र के पास पहुँची और "मेरा सिर बूढ़े को चाहिए, वही दे दो" कहकर उसके हाथ की गाँठ खोल दी। बूढ़ा बेवकूफों की तरह बस देखता रह गया; बंधन खुलते ही इन्द्र ने बुढ़िया की बात मानकर तुरन्त वज्र से बुढ़िया का सिर काटकर बूढ़े के सामने फेंका और अदृश्य हो गया। यह दृश्य देखकर बूढ़ा मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा।

संपर्क-सूत्र :
सहायक अध्यापक
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी
ई-मेइल : hindibidya14@gmail.com